प्रवचन–6 वचनामृत–47 से 50

(वचनामृत) 47 बोल, फिर से (लेते हैं)। **त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है।** क्या कहते हैं? प्रभु! यह आत्मा जो अन्दर वस्तु है वस्तु। वस्तु उसे कहते कि जिसमें अनन्त-अनन्त गुण बसे हुए हैं, रहे हुए हैं। ऐसा भगवान आत्मा, सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने कहा है, देखा है–वह जीव ध्रुव (है), त्रिकाली ध्रुव है। वह ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं। कठिन बात है प्रभु! पर्याय में बन्धन और पर्याय में मुक्ति दिखती है। पर्याय अर्थात् क्या? अवस्था। वस्तु अर्थात् क्या? त्रिकाल रहनेवाला तत्त्व। यह त्रिकाल रहा तत्त्व कभी बँधा नहीं। आहा...हा...! है?

मुक्त है या बँधा है, वह व्यवहारनय से है,... सूक्ष्म बात है, प्रभु! अनन्त काल से सत्य को सुना नहीं। इस देह में भगवान विराजमान है। चैतन्य द्रव्य के रूप में वस्तु है वस्तु। यह वस्तु है द्रव्यरूप, तत्त्वरूप, वह स्वयं बँधा हुआ नहीं और मुक्त नहीं। वस्तु तो अन्दर बन्ध और मुक्त की पर्याय से रहित है। आहा...! ऐसी बात!

प्रभु ! तेरी महानता का पार नहीं। तू अन्दर में एक समय की अवस्था को देखे बिना त्रिकाली को देख तो वह त्रिकाली चीज़ तो बन्धनयुक्त या मुक्त है ही नहीं। बन्धन और मुक्ति, यह तो एक समय की पर्याय में वर्तमान व्यवहारनय का उपचारित विषय है। आहा...! ऐसी बात है, प्रभु ! यह तत्त्व अन्दर में (मौजूद है), अनन्त काल में एक सेकंडमात्र भी यह तत्त्व क्या है ? उस पर लक्ष्य और ध्यान भी गया नहीं। बाह्य प्रवृत्ति में अटककर, स्वयं क्या चीज़ है ? इसकी इसने सँभाल नहीं की। वह यहाँ कहते हैं।

ये बहिन के वचन हैं। बहिन को नौ भवों का ज्ञान है। असंख्य अरब वर्षों का पूर्वभव का जातिस्मरण (ज्ञान) है। सूक्ष्म बात है, बापू ! भगवान सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं। वहाँ थे, वहीं से आये हैं और अन्दर में अनुभव होकर, राग से भिन्न पड़कर चैतन्य घन, नारियल में गोला जैसे पृथक् पड़ जाता है, वैसे सम्यग्दर्शन होने पर, धर्म की पहली दशा आने पर, राग से और शरीर से भगवान – (चैतन्य) गोला भिन्न दिखता है ! आहा...हा...! कठिन बात है, प्रभु !

तेरी प्रभुता से भरा हुआ जो तत्त्व है, वस्तु जिसको कहते हैं, वह बन्धन और मुक्ति तो पर्याय में–अवस्था में है। वस्तु त्रिकाल निरावरण है। आहा...हा...! यह बात कैसे बैठे ? बाह्य प्रवृत्ति में गले तक डूब गया (है)। इसमें यह तत्त्व अन्दर (कैसे बैठे) ?

बँधा हुआ या मुक्त, सो तो व्यवहारनय से है, वह तो पर्याय है। वह तो द्रव्य की वर्तमान दशा है, परन्तु त्रिकाली चीज़ है, वह तो त्रिकाल निरावरण अखंडानंद प्रभु (है)। जिनेश्वरदेव ने सर्वज्ञ स्वभाव में (ऐसा) देखा है। कल कहा था 'प्रभु तुम जाणग रीति...' प्रभु ! महाविदेह में सीमन्धर परमात्मा, सर्वज्ञ परमात्मा विराजमान हैं। जिनकी लोग सामायिक और प्रतिक्रमण (करते) समय आज्ञा लेते हैं। यह तो ठीक, परन्तु परमात्मा विराजते हैं। उनके मुख से निकली यह दिव्यध्वनि है। वह बहिन को अन्दर में से आयी है। वह किसी समय बोलने में आ गया।

('बहिन') ऐसा कहते हैं कि जो काई आत्मा है, त्रिकाली द्रव्य जो पदार्थ है, वह तो–बन्धन और मुक्ति तो पर्याय में हैं, अवस्था में हैं, वस्तु में नहीं। यह क्या होगा ? वस्तु में नहीं और पर्याय में है ! कभी सुना न हो ! है ?

जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है, वह छूटना चाहे तो छूट सकती है,...

मकड़ी! **जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जंजाल में फँसा है परन्तु मनुष्यरूप से मुक्त है;...** मनुष्य के रूप में वह कोई (मिट नहीं गया)। पर के व्यापार के समय मनुष्य मिटकर पर के व्यवसाय में कोई घुस नहीं जाता! मनुष्य तो मनुष्यरूप ही सदा है। ये सारी व्यापार-धन्धा आदि की चाहे जिस प्रकार की अवस्था में हो परन्तु वहाँ कोई मनुष्यत्व छूटकर पशु या दूसरी कोई दशा नहीं हो गयी। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु! मनुष्य तो मनुष्य ही है।

वैसे ही जीव, विभाव के जाल में बँधा है,... आहा...हा...! भगवान आत्मा! यहाँ तो आत्मा को 'भगवान' कहकर प्रभु सम्बोधन करते हैं!! त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव और सन्त, आत्मा को 'भगवान' कहकर बुलाते हैं! 74 गाथा में है, 74। ('समयसार') 72 गाथा में है—भगवान आत्मा! आहा...हा...! कैसे बैठे अन्दर? एक बीड़ी ठीक से पीये, वहाँ मज़ा आये, ऐसे में पाँच-पच्चीस लाख कुछ मिल गये, दो-पाँच करोड़ (मिले), उसमें जिसे मज़ा लगे, अब उसे आत्मा अन्दर में पर से भिन्न है, (यह) कैसे बैठे? भगवानजीभाई! आहा...हा...! वह तो जंजाल में फँस नहीं गया।

जीव विभाव के जाल में बँधा है, फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है... आहा...हा...! नारियल में जैसे गोला पृथक् है, वैसे यह राग और शरीर के बीच अन्दर प्रभु भिन्न (बिराजमान है)। सम्यग्दर्शन होने पर, धर्म की प्रथम दशा आने पर, धर्म की प्रथम सीढ़ी होने पर; आत्मा, राग से भिन्न गोला जानने में आता है। तभी उसे अभी सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली सीढ़ी—प्रथम श्रेणी कहने में आता है। कठिन बात है, प्रभु! आहा...हा...! बाहर की जंजाल में उलझकर अन्दर मर गया है!

अन्दर चैतन्य भगवान तीन लोक का नाथ अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान से भरा हुआ तत्त्व (मौजूद है)। (यहाँ कहा, जीव) विभाव के जाल में बँधा हुआ है। विभाव अर्थात् विकार, पुण्य और पाप के विकल्प की जाल। मकड़ी जैसे जाल में बँधी है, वैसे यह (आत्मा) पुण्य और पाप के विकल्प के राग के जाल में बँधा है। पर्याय में (बँधा है)! वस्तु में तो वस्तु भिन्न है। यह अब (कैसे) बैठे? ऐसा सुनने मिले नहीं! अरे...! प्रभु!

कहते हैं कि **परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है—ऐसा ज्ञात होता है।** सम्यग्दर्शन होने पर, धर्म की पहली दशा प्रगट होने पर, राग से और देह से अन्दर भिन्न (चैतन्य) गोला

ज्ञात होता है। ऐसी वह चीज़ है। आहा...हा...! पृथक् गोला अन्दर पड़ा है, (ऐसा) कहते हैं। कभी नज़र की नहीं, प्रभु! तूने तेरे अन्दर में चैतन्य की सत्ता में नज़र नहीं की है कि क्या यह चीज़ है? आहा...हा...!

इसलिए यहाँ कहते हैं कि वह जीव, विभाव के जाल में बँधा है परन्तु यदि प्रयत्न करे तो स्वयं पृथक् ही है। आहा...हा...! नारियल में (जैसे) गोला पृथक् हो जाता है, वैसे प्रभु राग और शरीर से भिन्न अन्दर जाने तो वह भिन्न ही पड़ा है। आहा...हा...! ऐसी बात अब सुनने भी मिलना मुश्किल पड़े, तो प्रभु उसे समझे तो कब? क्या हो? इसमें ऐसे अनार्यदेश में! ऐसी चीज़ अन्दर क्या है? (यह समझना कठिन पड़े)। आहा...!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! चैतन्य पदार्थ तो अन्दर भिन्न ही है। चैतन्य तो ज्ञान, आनन्द की मूर्ति (है)! आहा...हा...! यह आत्मा जो अन्दर में है, वह तो अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द की मूर्ति अर्थात् उसका स्वरूप ही अन्दर यह है। तेरी नज़र उसमें गयी नहीं। नज़र में राग और द्वेष, पुण्य और पाप और पुण्य-पाप के फल बाहर (में) धूल (पैसे) आदि (है)! यह राज मिले, पाट मिले या अरबों रुपये की पैदाइश हो, ये सब धूल-पुण्य के फलस्वरूप (मिली है) तेरी नज़र वहाँ गयी है। तेरी नज़र अन्दर राग से भिन्न चैतन्य है, वहाँ कभी तूने की नहीं। उसका तूने लक्ष्य किया नहीं, इसकी जाति को जानने, सँभालने और जानने, तूने तत्त्व को सँभालने और जानने का प्रयत्न कभी किया नहीं। आहा...हा...! कठिन बात है। है?

चैतन्य पदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञान–आनन्द की मूर्ति... आहा..हा...! जैसे शक्कर में मीठापन भरा है, उसमें हाथ का मैल दिखे, वह भिन्न है। बालक को रोटी के साथ शक्कर के टुकड़े दे, उसे हाथ से छूए तो मैल चढ़ता है, मैल जैसा दिखता है, परन्तु वह तो ऊपर है। शक्कर मूल चीज़ है, उसमें मीठापन भरा है। वैसे यह भगवान आत्मा...! प्रभु! सूक्ष्म बात है। यहाँ हमारे वहाँ तो (सोनगढ़ में) 45 वर्ष से चलता है। यह बात कोई नई नहीं है। 45 वर्ष से चलती है! अठारह बार तो ('समयसार' के) एक-एक अक्षर के अर्थ सोनगढ़ में हो चुके हैं। हज़ारों लोगों के बीच!

मुमुक्षु : ***गुरुदेव! भजन में ऐसा कहते हैं कि हे भगत! यह नयी बात तू कहाँ से लाया? आप कहते हो पुरानी बात है!***

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बात कही थी, प्रभु! अपनी स्वयं की बात ज्यादा नहीं करते! समझ में आया? साधारण–साधारण बात अपनी की जाती है। बाकी वैसे तो हम महाविदेह में प्रभु के पास थे। वहाँ राजकुमार थे, प्रभु! अरबों की आमदनी थी। परन्तु देह छूटते समय ऐसा रोग आया कि सहन नहीं हो पाया, मरकर यहाँ काठियावाड़ के 'उमराला' गाँव में जन्म हो गया। भावनगर के पास में 'उमराला' है। वहाँ तेरह साल रहा। नौ वर्ष से... 'पालेज' में हमारी दुकान है, 'भरुच' और 'बड़ोदा' के बीच... वहाँ नौ वर्ष (रहा)। वहाँ पूर्व का याद आता था। परन्तु क्या आता है, यह ज्यादा समझ में नहीं आता था। फिर अन्दर से 'बहिन' को जब जातिस्मरण हुआ, (उसमें) नौ भवों का प्रत्यक्ष (स्मरण आया), तब उन्हें सब ख्याल में आया कि, कहाँ से हम आये हैं? यहाँ से कहाँ जानेवाले हैं? सब निश्चित हो चुका है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! बैठना मुश्किल है। वहाँ से लायी हुई–भगवान के पास से आयी है!! आहा...!

तीन लोक के नाथ विराजते हैं, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, पाँच सौ धनुष की देह, दो हज़ार हाथ ऊँचे प्रभु हैं! समवसरण में विराजते हैं। आहा...! वहाँ पहले संवत् 49 में 'कुन्दकुन्दाचार्य' गये थे। तब वहाँ हमारी मौजूदगी थी। वहाँ हम समवसरण में उनके साथ गये थे। बहुत सूक्ष्म बात है, प्रभु! बहुत लम्बी बात है। यह तो थोड़ी साधारण बात करते हैं। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा चैतन्य भिन्न है, प्रभु! ऐसा तीन लोक के नाथ फरमाते थे। जिनेश्वरदेव सीमन्धर परमात्मा, बीस तीर्थंकररूप से महाविदेह में साक्षात् विराजते हैं। उनमें सीमन्धर परमात्मा प्रथम हैं। दूसरे नम्बर के, तीसरे नम्बर के–ऐसे बीस तीर्थंकर हैं। वर्तमान में महाविदेह में विराजते हैं। वे जो कहते हैं, वह यहाँ 'बहिन' की वाणी में आया है!! आहा...हा...! थोड़ा कठिन लगे, बापू! केशवलालभाई! कठिन लगे बापू! ज़रा, परन्तु अब सुनना तो पड़े न!

प्रश्न : प्रभुजी! लेकिन अब हमारी उम्र बहुत हो गयी। अब हम क्या करें?

समाधान : थम जाओ... थम जाओ, बापू! अब जम जाओ...!

प्रश्न : 'पाके घड़े कांठा चड़ावावा?!' (इतनी उम्र में नया सीखना)?!

समाधान : 'पाके घड़े कांठा चढ़शे', (इस उम्र में भी काम होगा!) यहाँ तो वृद्धावस्था में हो तो भी केवलज्ञान पाते हैं, ऐसा प्रभु कहते हैं!! वृद्धावस्था! अभी तो साधारण अवस्था है। परन्तु (पहले) करोड़ पूर्व की अवस्था (आयु) थी और (अभी भी) वहाँ है। यहाँ पर भी जब प्रथम तीर्थंकर थे, तब करोड़ पूर्व का आयुष्य था। करोड़ पूर्व में तो एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हज़ार करोड़ वर्ष बीतते हैं! इतना (समय) गया हो तो भी आखिर के समय अन्तर्मुहूर्त में भी केवलज्ञान पाकर मुक्ति में चले जाते हैं! गुलाँट खानी चाहिए जरा! जो बाहर में–जंजाल में ऐसे भटकता है, वैसे यहाँ अन्दर में गुलाँट जरा खा। कठिन बात है, प्रभु!

यहाँ कहते हैं, चैतन्य तो भिन्न ही है। चैतन्य तो ज्ञान, आनन्द की मूर्ति, ज्ञायकमूर्ति प्रभु अन्दर विराजता है। आहा...हा...! **परन्तु स्वयं अपने को भूल गया है, विभाव का जाल बिछा है...** आहा...! पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् राग। यह विभाव अर्थात् विकार। विकार की जाल बिछाकर पड़ा है, आहा...हा...! परन्तु अन्दर स्वयं विकार से रहित है, उसके सामने नज़र नहीं की। आहा...हा...!

विभाव का जाल बिछा है, उसमें फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। प्रयत्न करे, अन्दर में देखने का प्रयत्न करे, परन्तु बापू! ये कोई साधारण बातें नहीं हैं, यह कोई साधारण पुरुषार्थ से मिल जाये, ऐसा नहीं है। अनन्त-अनन्त प्रयत्न का पुरुषार्थ चाहिए, तब अन्दर राग से भिन्न पड़े, तब उसे आनन्द का नाथ गोला, आनन्द का गोला ज्ञात हो। तब उसे सम्यग्दर्शन और धर्म की प्रथम दशा प्राप्त होती है। इसके बिना धर्म की दशा हो सकती नहीं। जगत (भले ही इससे उलटा) माने और मनवाये, ऐसा तो अनादि से चला आया है, परन्तु राग के विकल्प से–दया, दान और व्रत, भक्ति के परिणाम के राग से भी प्रभु अन्दर भिन्न है। ऐसी जब तक अन्दर नज़र न करे, तब तक उसका आत्मा उसकी नज़र में आता नहीं। समझ में आया? आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं। **परन्तु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है।** आहा...हा...! परन्तु अन्दर में प्रयत्न–पुरुषार्थ चाहिये, बापू! भगवंत! तेरा स्वरूप तो अन्दर पूर्णानन्द से भरा पड़ा है। ये राग और द्वेष तो दुःख की दशा दिखती है। पुण्य और पाप के भाव, प्रभु! वह तो राग और दुःख है। दुःख के पीछे आनन्द का नाथ भरा पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द से भरा प्रभु! (है),

इसकी ओर देख, देख तो तुझे प्राप्त हो वैसा है। अन्तर्मुहूर्त में पलटा खा जाये, अन्तर्मुहूर्त में आत्मा को केवलज्ञान होकर मुक्त हो, ऐसी उसमें ताकत है!! परन्तु वह ताकत, पुरुषार्थ करे तो (प्रगट हो)।

(अब कहते हैं, **द्रव्य बँधा नहीं है।**) है अन्त में अन्दर? वस्तु है, वह बँधी हुई नहीं है, प्रभु! वह त्रिकाल निरावरण है। कल कहा था। 'समयसार' की 320 गाथा है, इसके अर्थ में यह है कि, त्रिकाल निरावरण है, अन्दर वस्तु है, वह त्रिकाल निरावरण प्रभु है। परन्तु वर्तमान पर्याय-दशा की दृष्टि में उसको वह चीज़ दिखती नहीं है। जैसे समुद्र पानी से भरा है, परन्तु किनारे पर(यदि) चार हाथ का कपड़ा या (पर्दा) बीच में रखे तो कपड़ा आँख में–नज़र में आता है। समुद्र नज़र नहीं आता। वैसे अन्दर भगवान अनन्त आनन्द और ज्ञान से भरा हुआ है, परन्तु राग और पुण्य-पाप (पर) नज़र है, इस नज़र के कारण भगवान दिखता नहीं है। आहा...हा...! भगवानजीभाई! बातें ऐसी हैं, बापू!

यहाँ तो 45 साल से (यही) चलता है। 45 साल सोनगढ़ गये, उसको (हुए)। 90 वाँ वर्ष चलता है–शरीर को तो 90 वाँ वर्ष चलता है। सारी जिन्दगी यही किया है। दुकान है.. पालेज में दुकान है, भरुच और बड़ौदा के बीच, बड़ी दुकान है। वहाँ पाँच साल दुकान चलायी थी। अठारह वर्ष की उम्र से लेकर तेईस (वर्ष तक) (ऐसे) पाँच (साल चलायी)। तेईस वर्ष में छोड़ दिया। दुकान बड़ी है। चालीस लाख रुपये है, चार लाख की आमदनी है, अभी है। अभी चार लाख की तो पैदाइश है! भरुच और बड़ौदा के बीच पालेज है। वहाँ जाते हैं कई बार। फ़ूफ़ी के लड़के भागीदार थे, उनके लड़के हैं। हमारे यहाँ से कोई नहीं है। परन्तु यह तो हमारा तब से अन्दर से परिचय है। बहत्तर साल पहले! शास्त्र पढ़ता था। पिताजी की घर की दुकान (थी), वहाँ पढ़ता था। **'वह पूर्व के संस्कार थे!!'** उसमें से अन्दर ज्ञात होता था... आहा...हा...! कि यह आत्मा तो त्रिकाली आनन्दकन्द और शुद्ध है! ये पुण्य और पाप का जो जाल दिखता है, वह विकल्प का जाल (है), वह लार है। वह आत्मा नहीं।

अरेरे...! कब उसे बैठे? प्रभु! यह जगत की जंजाल...! इसमें दो-पाँच-दस करोड़ रुपया हो, उसे (ऐसा लगता है कि) आहा...हा...! मकड़ी जैसे लार में फँस जाती है, वैसे यह बेचारा उलझा है। आहा...हा...!

दीनानाथ के दयाल! परमात्मा ने तो दया से, करुणा से बात की है, अकषाय करुणा से (बात की है)! प्रभु, तू। अकषाय करुणा!! पण्डितजी! आहा...! तीन लोक का नाथ परमात्मा विराजता है, उनकी बात की ध्वनि– (वाणी में), उसके सार में यह आया था। वह याद आया, सो यह लिखा गया है!! बहिन को याद में (स्मरण में) एकदम इतना याद आया है... कि असंख्य अरब वर्ष की बात, (जैसे) कल की (बात) याद आये, वैसे याद आता है!! परन्तु बाहर निकलने का (डॉक्टरों द्वारा) इनकार है। वहाँ सोनगढ़ में रहते हैं। यहाँ कहते हैं ये उनके शब्द हैं।

प्रयत्न करे तो... **द्रव्य बँधा नहीं है।** आहा...हा...! कैसे बैठे यह? द्रव्य क्या? और पर्याय क्या? पर्याय अर्थात् प्रभु? पर्याय अर्थात् अवस्था। जैसे सोना है न सोना? उसमें सोना है वह वस्तु है और सोने में से जो कड़ा, कुण्डल, अँगूठी इत्यादि बनता है वह सब अवस्थाएँ हैं, अवस्थाओं को पर्याय कहते हैं और त्रिकाली सोना को सोना–द्रव्य कहने में आता है। वैसे आत्मा में राग-द्वेष, पुण्य-पाप होवे, उन्हें विकारी पर्याय कहते हैं और इनसे रहित अन्दर त्रिकाली पड़ा है, उसे आत्मद्रव्य कहते हैं। आहा...हा...!

बहिन के उसमें (वचनामृत में) एक शब्द आया था, **सुवर्ण को ज़ंग नहीं लगती।** आया था? क्या तीन शब्द थे न? तीन हैं न? 'अग्नि को दीमक नहीं लगती' आहा...हा...! 'सुवर्ण को ज़ंग नहीं लगती, अग्नि को दीमक नहीं लगती'–तीसरा बोल है न कुछ? तीन बोल कहे थे न? 'प्रभु को आवरण नहीं होता।' प्रभु! कठिन लगेगा, भगवान! यहाँ तो अन्दर की भगवान की बात है, नाथ! आहा...हा...!

श्रोता : आवरण, न्यूनता या अशुद्धता आती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवरण (या) अशुद्धता उसमें है ही नहीं। वह तो त्रिकाली आनन्द का नाथ अन्दर विराजमान है...! आहा...हा...! 380 बोल है। 140 पान पर। **जिस प्रकार सुवर्ण को जंग नहीं लगती...** सोने को ज़ंग नहीं लग सकती। लोहे को ज़ंग लगती है। आहा...हा...! **अग्नि को दीमक नहीं लगती,...** ये दीमक नहीं होती सूक्ष्म? जंतु... छोटा जंतु... सफेद? जैसे धूप लगे वैसे ही खड़-खड़ होकर एकदम जल जाये। वैसे अग्नि में दीमक नहीं होती। **उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव में आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।** सूक्ष्म बात है, प्रभु! नया (पहले-पहले) सुने उसे थोड़ा कठिन लगे ऐसा है, नाथ!

प्रभु! तेरी बात ही निराली है, बापू! आहा...! परन्तु इसकी प्रभुता की इसे खबर नहीं है। रंकपना मानकर बैठ गया है। एक थोड़ा-सा राग करे वहाँ ऐसा हो जाता है कि मानो हमने (कुछ कर लिया)! पुण्य किया इसमें क्या से क्या कर दिया मानो!! लाख-दो लाख, पाँच लाख कुछ खर्च करे...! ऐ...ई.. भभूतमलजी! इन्होंने आठ लाख दिये थे। बैंगलोर में पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाया, उसमें आठ लाख इन्होंने दिये थे, यह भभूतमल ने। परन्तु बात ऐसी (है) कि, तेरे पच्चीस-पचास करोड़ दे दे न! परन्तु उसमें धर्म तीन काल में नहीं है। उसमें राग की मन्दता करेगा तो पुण्य है, परन्तु धर्म नहीं। आहा...हा...! भभूतमलजी! यह तो पहले से बात की थी। ऐसे तो कई करोड़पति वहाँ आते हैं। अरबोंपति आते हैं। धूल के धनी!! आहा...!

यह आत्मा अन्दर है, उसे ज़ंग नहीं लगती (ऐसा) कहते हैं। आहा..! (जैसे) सोने को ज़ंग नहीं लगती, वैसे अन्दर तीन लोक के नाथ को राग नहीं है। अन्तर परमात्मा स्वरूप भरा हुआ है, प्रभु! अग्नि में दीमक नहीं है, वैसे प्रभु में राग और द्वेष की दीमक नहीं है। **ज्ञायकस्वभाव में आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती! तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नों की चमक प्रगट होगी।** आहा...हा...!

यह 'बहिन' की वाणी है! यह तो पूरी पुस्तक... सहज सहज बोले थे परन्तु उन्हें पता भी नहीं, चौंसठ बालब्रह्मचारी लड़कियाँ हैं, उनके (बहिनश्री के) आश्रय में लाखोंपति-पचास-पचास लाख की (आमदनीवालों की) बेटियाँ बालब्रह्मचारी हैं, इनमें से नौ लड़कियों ने लिख लिया था। इन्हें (बहिन को) पता नहीं था कि ये लिखते हैं! उसमें से इनके भाई के हाथ में आ गया। उन्होंने फिर इसको प्रसिद्ध किया। वरना वे स्वयं तो प्रसिद्धि में आने की या लिखाने की बात करते ही नहीं। प्रसिद्धि में आने की बात नहीं।

वे यहाँ कहते हैं **प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। द्रव्य बँधा नहीं है।** है? 47 बोल में? आहा...हा...! ऐसा कठिन लगे, बापू! इसमें ये (सारी) धमाधम!

विकल्प में पूरा–पूरा दुःख लगना चाहिए। विकल्प में किंचित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है ऐसा जीव को अन्दर से लगना चाहिए। एक विकल्प में दुःख लगता है और दूसरे मन्द विकल्प में शान्ति का आभास होता है, परन्तु विकल्पमात्र में तीव्र दुःख लगे तो अन्दर मार्ग मिले बिना न रहे॥48॥

48 (वाँ बोल)। **विकल्प में पूरा–पूरा दुःख लगना चाहिए।** क्या कहते हैं? पुण्य और पाप का भाव, शुभ और अशुभ का भाव, उसमें दुःख लगना चाहिए। क्योंकि वह दुःखस्वरूप है। भगवान इससे भिन्न आनन्दस्वरूप है। आहा...हा...! है? विकल्प अर्थात् राग। पुण्य और पाप की जो वृत्ति उठती है, उसमें पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिए। आहा...हा...!

यह तो विकल्परहित प्रभु, आनन्दमूर्ति है! यदि विकल्प में दुःख लगे तो विकल्परहित आनन्द की मूर्ति में अन्दर नज़र करेगा। परन्तु इसे विकल्प अर्थात् क्या? और दुःख अर्थात् क्या? इसकी खबर भी नहीं है! (यह) जाने कि विकल्प उठना अर्थात् क्या? विकल्प अर्थात् क्या? विकल्प अर्थात् राग। फिर दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो या हिंसा, झूठ, चोरी, विषय का राग हो–दोनों (में) पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिए। आहा...हा...! ऐसी बात!

(अब कहते हैं) **विकल्प में किंचित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है...** (अर्थात्) पुण्य और पाप की वृत्ति में–राग में ज़रा-सा (भी) सुख और शान्ति नहीं है। धूल में तो नहीं... धूल अर्थात् क्या? ये पैसे! वह तो मिट्टी-धूल है! उसमें तो कुछ है नहीं। यह (शरीर भी) मिट्टी है न! कहा नहीं था?

शरीर में ज़ंगवाली कील लगे, तब ऐसा कहते हैं 'मेरी मिट्टी पकाऊ है तो पानी छूने देना नहीं।' 'मेरी मिट्टी पकाऊ' ऐसा बोलें! बोले जरूर लेकिन समझे नहीं कुछ!! ऐसा बोलेंगे कि 'मेरी मिट्टी पकाऊ है' ज़ंगवाली कील यदि लगी हो (और) यदि उसे पानी लग जाये तो पक जाता है। (तब) ऐसा कहें 'मेरी मिट्टी पकाऊ (है); इसलिए पानी छूने देना नहीं।' और कहे–'शरीर मेरा है!' एक ओर मिट्टी कहता है और दूसरी ओर शरीर मेरा है–ऐसा कहता है!! यह शरीर जड़, मिट्टी, धूल है, यह तो! ये सब क्रियाएँ–चलने, फिरने की होती है, वह जड़ की क्रिया (है)। वह आत्मा की क्रिया है ही नहीं। आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं)। **विकल्प में पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिए। विकल्प में किंचित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है—ऐसा जीव को अन्दर से लगना चाहिए।** अरेरे...! परन्तु कब यह विचार करे? कब वह निवृत्त होकर विचार करे और समय निकाले? एक तो पाप से निवृत्त होता नहीं। ऐसा (कोई) कहता था न? एक तो बाहर से पाप से अभी निवृत्ति नहीं मिलती! आहा...हा...! बापू! भगवान! हमारे पास तो यह बात है।

यह पुण्य और परमात्मा के घर की बात है! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि, ये यहाँ समवसरण में सामने विराजते हैं, प्रभु! उनकी यह ध्वनि है! आहा...हा...! वही बात इन शब्दों में 'बहिन' के मुख से निकली है!!

(कहते हैं कि) **विकल्प में किंचित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है...** (अर्थात्) राग का अंश आये, भले ही इसे दया, दान और भक्ति का (भाव) आये; पचास लाख, करोड़, दो करोड़ दिये हो, फिर भी उसमें राग की मन्दता होगी तो पुण्य है, परन्तु यह पुण्य है, वह दुःख है। अरर्र...! यह बात कैसे बैठे?

लक्ष्मी तो जड़ है, वह तो धूल है। प्रभु चैतन्य है। प्रभु अरूपी है, लक्ष्मी रूपी, धूल, मिट्टी है, परन्तु अन्दर जो पुण्य और पाप के विकल्प होते हैं, वे भी अचेतन हैं। चैतन्य आनन्द का नाथ उसमें है नहीं। राग के भाव में चैतन्य प्रकाश का नूर (नहीं है)। चैतन्य के नूर का पूर अन्दर भरा है। इस चैतन्य का अंश, पुण्य और पाप के विकल्प में नहीं है। इसलिए उन्हें अजीव और जड़ कहते हैं। अरेरे...रे...! यह बात!

विकल्प में किंचित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है—ऐसा जीव को अन्दर से लगना चाहिए। एक विकल्प में दुःख लगता है और दूसरे मन्द विकल्प में शान्ति का आभास होता है,... क्या कहा यह? यह विषय का—भोग का एक अशुभराग हो (या) कमाने का (तो) उसमें तो कदाचित् इसे ऐसा लगे भी कि यह पाप है। परन्तु पुण्य का विकल्प जब आता है, तब उसमें शान्ति का आभास होता है (कि) 'शुभराग तो करते हैं, हम दूसरे से विशेष शुभराग करते हैं न, हमें इतनी तो शान्ति है न!' धूल में भी शान्ति नहीं है, सुन तो सही! आहा...हा...! 'दूसरे मन्द विकल्प' अर्थात् शुभभाव! उसमें इसे शान्ति लगती है, वह भ्रम है, वह अज्ञान है, वह मिथ्यात्व है, वह जैनधर्म से विरुद्ध बात है! ऐसे राग में जैनधर्म नहीं है। आहा...हा...! है (अन्दर)?

परन्तु विकल्पमात्र में तीव्र दुःख लगे... रागमात्र में उसे दुःख लगे, आहा...हा...! **तो अन्दर मार्ग मिले बिना न रहे।** यह शर्त! यह इसकी शर्त! कि शुभ और अशुभराग में यदि दुःख लगे तो अन्दर गये बिना रहे नहीं। भभूतमलजी! कहाँ आनन्द... आहा...हा...! कहाँ गये, नहीं आये भाई? न्यालभाई? कहाँ बैठे? कहीं गये होंगे। स्वीट्जरलैंड से आये हैं न, नहीं लगते, पैसे में मजा आता है, इसमें नहीं.... नहीं। आहा...हा...! विकल्पमात्र में तीव्र दुःख लगे, (ऐसा कहा)!

प्रभु! कठिन लगता है, नाथ! परन्तु वस्तु यह है। दूसरे रास्ते जायेगा तो धोखे में रह जायेगा, हों...! यह मनुष्यभव चला जायेगा और मनुष्यभव नष्ट होने से कोई आत्मा का नाश नहीं होगा। आत्मा तो यह भव छोड़कर अन्यत्र जायेगा। अज्ञानरूप जैसे भाव किये होंगे, वैसे दुःख अगले भव में भोगेगा। क्योंकि देह छूटकर आत्मा तो चला जायेगा। आत्मा तो नित्य है। इस देह के बाद भी आत्मा तो अनन्त काल रहनेवाला है। (तो) कहाँ रहेगा? राग और पुण्य में यदि दुःख (न) लगा तो वहीं रहेगा और संसार में भटकेगा। आहा...हा...! ऐसी बात है, प्रभु! सूक्ष्म लगे नाथ!

परमात्मा, यह कहा नहीं था? 'धर्मचन्दजी' मुनि ने ब्रह्मचर्य की बहुत बात की। 'पद्मनंदि पंचविंशति' (शास्त्र) है। (उसमें) ब्रह्मचर्य की बात करते-करते (आचार्य महाराज कहते हैं) कि शरीर से ब्रह्मचर्य का पालन, वह ब्रह्मचर्य नहीं है। शरीर से तो अनन्त बार ब्रह्मचर्य का पालन किया। ब्रह्मचर्य तो उसे कहे, 'ब्रह्म' अर्थात् आनन्द और 'चर्य' अर्थात् उसमें चरना / रमण करना। अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ में रमणता करे, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं। ऐसी ब्रह्मचर्य की सूक्ष्म व्याख्या करते-करते आचार्य महाराज कहते हैं, प्रभु! मेरी बात जवानों को, भोग के रसिकों को ठीक न लगती हो.... (तो) प्रभु! माफ़ करना!! हमारे से दूसरी क्या आशा तू रखेगा? हम तो तुझे सत्य बात कहनेवाले और सत्य बात माननेवाले हैं। ऐसे में तू हमारे पास से असत्य बात लेना चाहेगा सो तो नहीं आयेगी। आहा...हा...! दिखाया था न? 'पद्मनंदि पंचविंशति!' झवेरचन्दभाई! (उसमें) गाथा है। ब्रह्मचर्य की व्याख्या ऐसी की... ऐसी की... (कि) शरीर और मन से पालता हो, वह ब्रह्मचर्य नहीं!

परमात्मा कहते हैं, ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं—ब्रह्म अर्थात् आत्मा—अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसे चरना अर्थात् (उसमें) रमणता करे, उसका नाम ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह तुझे

यदि न सुहाये, न रुचे तो हम तो मुनि हैं, माफ करना! हमारे पास (तू) दूसरी आशा (मत रखना)। तुझे अच्छी लगे ऐसी बात नहीं आयेगी। तुझे रुचे ऐसी बात नहीं आयेगी! 'पद्मनंदी' में पाठ है। 26 अध्ययन का पूरा शास्त्र है। मुनि ने बनाया है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि, 'विकल्प में तीव्र दुःख लगे,...' आहा...हा...! तो अन्दर में मार्ग मिले बिना रहेगा नहीं। क्या कहते हैं, प्रभु? पुण्य और पाप का भाव तो विकल्प और राग है। प्रभु! यदि तुझे राग में दुःख लगे तो उस दुःख से अन्दर आनन्दस्वरूप भिन्न है, उसे तू खोज़े बिना–ढूँढ़े बिना रहेगा नहीं। परन्तु यदि तुझे विकल्प में दुःख नहीं लगा तो वहीं का वहीं पड़ा रहेगा तो चौरासी में भटकेगा। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। किस प्रकार का उपदेश है यह? हमारे वहाँ सोनगढ़ में 45 वर्ष से चलता है। यह कोई पहल-पहल बात नहीं चलती। 45 वर्ष की उम्र में गये थे और 45 (बाद में हुए)। 90 वर्ष हुए इस शरीर को! शरीर को 90 वर्ष हुए! अन्दर भगवान आत्मा तो अनादि–अनन्त है। उसे कहाँ उम्र लागू पड़ती है! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि विकल्प में यदि दुःख लगे... संयोग की बात नहीं (अर्थात्) प्रतिकूलता, निर्धनता ये नहीं–(परन्तु) विकल्प जो पुण्य-पाप के उठते हैं, उसमें प्रभु! यदि तुझे दुःख लगे, उस विकल्प (में) तुझे आकुलता ज्ञात हो तो तू आनन्द को खोजे बिना नहीं रहेगा, तो आत्मा आनन्दस्वरूप है उसे तू ढूँढ़ेगा। परन्तु विकल्प में (यदि) दुःख नहीं लगा तो आनन्द की खोज तू करेगा नहीं और वहीं का वही पड़ा रहेगा और चौरासी में भटकेगा। आहा...हा...! ऐसी बात कान में पड़ने पर कठिन लगे! वह अन्दर में कब जाये? और कब विचार करेगा? वस्तु की स्थिति ऐसी है, बापू! आहा...हा...!

सारे दिन में आत्मार्थ को पोषण मिले ऐसे परिणाम कितने हैं और अन्य परिणाम कितने हैं वह जाँचकर पुरुषार्थ की ओर झुकना। चिन्तवन मुख्यरूप से करना चाहिए। कषाय के वेग में बहने से अटकना, गुणग्राही बनना॥49॥

49 वाँ बोल। **सारे दिन में आत्मार्थ को पोषण मिले, ऐसे परिणाम कितने...** किये? यह कभी जाँच की है? ऐसा कहते हैं। सारे दिन में आत्मा को पोषण मिले, आनन्द को, शान्ति को (पोषण मिले) ऐसे (परिणाम) कितने किये? **और अन्य परिणाम कितने**

हैं, वह जाँचकर... इसकी जाँच करके, **पुरुषार्थ की ओर झुकना।** (अर्थात्) अन्दर में झुकना।

चिन्तवन मुख्यरूप से करना चाहिए। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु है। सत् चिदानन्द है! सत् अर्थात् शाश्वत! चिदानन्द = चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। यह प्रभु तो अन्दर में चिदानन्द (अर्थात्) ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है। आहा...हा...! अरे...! कैसे बैठे? यहाँ थोड़े मैसुब और अरवी के पत्ते की पकौड़ी खाने मिले कि ओ...हो... मज़ा आ गया...! ऐसा माने! दूधपाक और पूड़ी खाता हो, वहाँ मज़ा... मज़ा... आ गया, ऐसा माने! आहा...हा...! खुशी मनावे...! आहा...हा...!

बाहर की बातों में जिसको मज़ा दिखाई दें, उसे (राग में) दुःख नहीं लगता। इसलिए अन्तर में आनन्द है, उसमें वह देखने–सम्यग्दर्शन करने का उद्यम नहीं करता। सम्यग्दर्शन (अर्थात्) सम्यक् अर्थात् सच्चा दर्शन–समकित अर्थात् सत्य दर्शन, सच्ची श्रद्धा। जो आनन्द का नाथ अन्दर भगवान (है), उसकी सम्यक् प्रकार से प्रतीति–श्रद्धा। अन्दर विकल्प में दुःख लगे तो इसकी श्रद्धा में जायेगा, परन्तु दुःख न लगे, तब तक अन्दर की श्रद्धा में नहीं जाता। समझ में आया?

यह 'समझ में आया?' अर्थात्? समझ तो अलग वस्तु है, परन्तु किस पद्धति से कहा जाता है? किस रीति से कहने में आता है? यह ख्याल में आता है? इतनी बात है। आहा...हा...! समझ में आ जाये, तब तो कल्याण होकर संसार छूट जाये!! परन्तु किस रीति व पद्धति से, किस कला से कहा जाता है? यह ख्याल में आये तो इसे अन्दर जाने का पुरुषार्थ और प्रयत्न हो। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, शुद्ध आत्मा के पोषण के कितने परिणाम हुए? और अशुभ एवं शुभ (भाव) जो अशुद्ध हैं–क्या कहा यह? शुभभाव और अशुभभाव दोनों अशुद्ध हैं और आत्मा शुद्ध है, तो शुद्ध की पुष्टिरूप कैसे, कितने परिणाम हुए? और शुभ-अशुभ जो अशुद्ध है, उसके कैसे (कितने) परिणाम हुए?–उसका तूने विचार किया नहीं। उसका यदि विचार करे...। आहा...हा...! है? **वह जाँचकर पुरुषार्थ की ओर झुकना।** आहा...हा...! क्या करना इसमें? सूझ पड़े नहीं। बाहर से क्या करना? बाहर का क्या धूल करे? शरीर को आत्मा हिला भी सकता नहीं! प्रभु! क्या कहें?

यह शरीर जड़ है। यह जो चलता है, वह जड़ की क्रिया (है), आत्मा से नहीं होती। आत्मा, जड़ का कर्ता तीन काल में नहीं हो सकता। जड़ का कर्ता आत्मा हो जाये तो आत्मा (स्वयं) जड़ हो जाये! आहा...हा...! शरीर की ये क्रियाएँ–चलना, फिरना, बोलना, वह तो जड़ की–मिट्टी की क्रिया है। वह आत्मा की क्रिया नहीं। वह तो नहीं, परन्तु अन्दर पुण्य और पाप के भाव हो, वह आत्मा की क्रिया नहीं। आहा...हा...!

वही यहाँ कहते हैं, (कि) ऐसे परिणाम कितने हुए? (अर्थात्) अपने आत्मा की शुद्धता के पोषणरूप और अशुद्धतारूप शुभाशुभपरिणाम कितने हुए? इसे जाँचकर पुरुषार्थ की ओर झुक! आत्मा के प्रति झुक! उस तरफ झुक! आहा...! पुण्य और पाप के परिणाम की ओर तेरा झुकाव है, प्रभु! आहा...हा...! वह झुकाव अब आत्मा के प्रति कर! यदि तुझे सुखी (होना हो) और जन्म-मरण मिटाने हो तो। शर्त यह! जन्म-मरण नहीं मिटाने (हो तो) अनन्त काल से भटक (ही) रहा है। आहा...! साधु भी अनन्त बार हुआ परन्तु इसे आत्मज्ञान (नहीं हुआ)। आत्मा क्या? वह आत्मज्ञान किया नहीं। समझ में आया? आहा...हा...! अनन्त बार मुनिपना लिया, परन्तु आत्मा, राग की क्रिया से भिन्न है, यह बात इसे (कभी) नहीं बैठी। आहा...हा...! इन सब राग की क्रियाओं में ही फँस गया है। जो शुभराग है, वह भी संसार है। कठिन लगे, प्रभु!

राग से भिन्न अन्दर भगवान है, उसे तूने कितने परिणामों से पुष्ट किया? और पुण्य-पाप के अशुद्ध परिणामों से कितना पुष्ट किया? इसकी जाँच करके पुरुषार्थ के प्रति झुक! अब, अन्दर की ओर झुक! (ऐसा कहते हैं) आहा...हा...!

चिन्तवन मुख्यरूप से करना चाहिए। कषाय के वेग में बहने से अटकना,... आहा...हा...! 'कषाय' अर्थात् 'कष' मतलब संसार। 'आय' मतलब लाभ। 'कषाय' शब्द है। (उसमें) 'कष' अर्थात् संसार और 'आय' अर्थात् लाभ। पुण्य-पाप का भाव कषाय है। इससे वह संसार का लाभ है, वह भटकने का लाभ है। आहा...हा...! उसे कषाय कहते हैं।

कषाय के दो प्रकार हैं। राग और द्वेष। द्वेष के दो प्रकार हैं–क्रोध और मान। राग के दो प्रकार हैं–माया और लोभ। माया, लोभ, क्रोध और मान सब मिलाकर राग-द्वेष हैं। राग-

द्वेष होकर मोह है। इस मोह के परिणाम में अनादि से रहा है। परन्तु इस मोह के परिणाम रहित स्वरूप क्या है? उसकी दरकार और प्रयत्न किया नहीं। सुनने मिला तब ऐसे करके (निकाल) दिया कि 'यह तो सूक्ष्म बात है, सूक्ष्म बात है, इसमें अपना काम नहीं!' ऐसा करके छोड़ दिया है। आहा...हा...! 'ये तो अन्दर बहुत सूक्ष्म बातें हैं! ये सब तो त्यागियों की समझ में आये! ऐसा कहीं अपने को समझ में आयेगा?'

मुमुक्षु : सुख ही स्वयं सूक्ष्म है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : (सच्चे) दुःख (की) ही अन्दर खबर नहीं पड़ती कि दुःख किसको कहना?! विषय-भोग का अशुभ राग होना, वह राग दुःख(रूप) है। आहा...! और पैसे का मान करना भी दुःख है और शुभराग करना भी दुःख है। अरेरे...रे..! यह बात कैसे बैठे? यह शुभाशुभ राग है, वह दुःख है, इससे (पीछे) हट जा! आया? है? **वेग में बहने से अटकना,...**

कषाय के वेग में बहने से अटकना,... शब्द है? **गुणग्राही बनना।** अन्तर आत्मा में आनन्द है, उसके गुणग्राही बनना। अन्तर के गुण को पकड़नेवाला बनना। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु! पुण्य-पाप कषाय का जो भाव है, उसे छोड़कर गुणग्राही (बनना)। (अर्थात्) आत्मा आनन्द, ज्ञान और शान्ति का सागर है, उन गुणों को ग्रहण करना। इससे तुझे आत्मा प्राप्त होगा। इसके बिना आत्मा प्राप्त होगा नहीं। इसके बिना सम्यग्दर्शन की प्रथम दशा भी शुरु नहीं होगी। आहा...हा...! है?

गुणग्राही बनना। गुणग्राही अर्थात्? दूसरे के गुण (ग्रहण करना), ऐसा नहीं। पुण्य और पाप के दो भाव (हैं)। प्रभु! ये दोनों कषाय हैं। दोनों से संसार की गति में भटकने का लाभ मिलता है। इस कषाय से भिन्न होकर गुणग्राही (बनना)। (अर्थात् कि) आत्मा आनन्द और ज्ञान है, उन गुणों के ग्राही बनना। इन गुणों को पकड़ने अन्दर में जाना। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु! भाषा तो यह सादी (है) परन्तु इसके भाव गम्भीर हैं! है? **गुणग्राही बनना।** आहा...! यह 49 (पूरा हुआ)।

तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर, जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जायगी। सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्त में अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। इसलिए सत् के गहरे संस्कार डाल॥50॥

50 (वाँ बोल)। **तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर...** आहा...हा...! सत् (अर्थात्) सत्ता। अन्दर चैतन्य की सत्ता है–त्रिकाली अस्तित्व है, ऐसे सत् को ढूँढ़ने जा! ऐसे सत् की खोज कर! आहा...! यह कितनावा आया? सत् की गहरी जिज्ञासा कर। सत् अर्थात्? पुण्य और पाप के विकल्प असत्य हैं। शरीर, वाणी, मन की तो बात ही यहाँ नहीं; वे तो जड़ हैं। परन्तु इसमें हो रहे पुण्य-पाप के भाव भी चैतन्यस्वरूप के भाव से भिन्न विकल्प का जाल है, उसे छोड़कर अन्तर में गहरे विचार में जा! आहा...हा...! गहरी... गहरी... जिज्ञासा कर! **जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा;...**

अन्तर में गहराई–गहराई तक जा! अन्दर इस राग के तल के नीचे भगवान बिराजमान है। राग ऊपर-ऊपर है। जैसे पानी में तेल की बूँदें ऊपर–ऊपर हैं। पानी के दल में तेल की बूँदें ऊपर हैं, वह पानी के दल में प्रवेश नहीं करती। वैसे भगवान आनन्दस्वरूप में पुण्य-पाप के परिणाम तेल की बूँद समान हैं, वे अन्दर प्रवेश नहीं करते। आहा...हा...! अरे...! ऐसी बातें कहाँ से (आयी)?! (परन्तु) ऐसी बात है, प्रभु! यहाँ तो। हें? इस घर में तो यह (बात) है।

एक बार बात की थी न? 'अब हम कबहु न निज घर आये,...' 'अब हम कबहु न निज घर आये, पर घर भ्रमत अनेक नाम बनाये, परभाव भ्रमता अनेक नाम धराये, परन्तु अब हम कबहु न निजघर आये।' निजघर–अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु विराजमान है, इसके घर में जाने का प्रयत्न तो किया नहीं, परन्तु (वहाँ) जाने योग्य है–ऐसी जिज्ञासा भी नहीं की! उसमें जाने योग्य है–ऐसी जिज्ञासा भी नहीं की!! सो यहाँ कहते हैं।–(तू सत् की) गहरी... गहरी... जिज्ञासा कर! आहा...हा...!

'बहिन' तो अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में... रात्रि में थोड़ा बोल गये थे। जो

गुप्तरूप से लिख लिया। उन्हें तो पता भी नहीं था कि यह लिखा जा रहा (है)! फिर नौ ब्रह्मचारी लड़कियों ने लिख लिया था वह बात प्रसिद्धि में आ गयी।

जैसे यह 'रामजीभाई' और अपनी ओर से–सोनगढ़ की तरफ से बाईस लाख पुस्तकें छपी हैं! आठ लाख पंडितजी की ओर से जयपुर से छपी हैं। लेकिन हमने कभी नहीं कहा कि, यह करो या पुस्तक बनाओ या मकान बनाओ–मन्दिर बनाओ! यहाँ तो तत्त्व का उपदेश (है)! सुनना हो वह सुने और करना हो, वह करो!! यहाँ हमें किसी को कहना नहीं है कि यहाँ पाँच हज़ार दे दो और दस हज़ार दे दो! यह बात यहाँ कभी नहीं होगी! बाहर की क्रिया तो बननेवाली होती है, वह बनती है। यहाँ तो आत्मा की बात करनी है! 'रामजीभाई' 97 वर्ष की उम्र के बड़े वकील थे। 35 वर्ष पहले कोर्ट में पाँच घण्टे जाते और दो सौ रुपये लेते थे। 35 वर्ष पहले! वे भी अभी निवृत्ति लेकर वहीं रहते हैं। सुनने को तब ये सब बातें चलती हैं।

(यहाँ कहते हैं), (तू सत् की) गहरी... गहरी... जिज्ञासा कर, **जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर...** आहा...हा...! प्रभु! तेरी मति सरल एवं सुलटी करके; वक्र विकार और टेढ़ापन छोड़कर (ऐसा कहते हैं) आहा...हा...! **(तेरी मति) सरल एवं सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जायगी।** (अर्थात्) यदि आत्मा को राग से भिन्न करके सरल और सीधी दशा में जायेगा तो तुझे आत्मा मिल जायेगा। आत्मा आनन्दरूप परिणमित हो जायेगा। आहा...हा...! है?

सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे... (अर्थात्) सत् चिदानन्द प्रभु! सर्वज्ञ जिनेश्वर परमेश्वर ने कहा वह! इसके अलावा किसी और ने कहा वह (नहीं)। परमेश्वर तीन लोक के नाथ अरिहन्त देव विराजते हैं, उन्होंने कहा ऐसा आत्मा, इसके संस्कार यदि डाले होंगे, आहा...हा...! **सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्त में अन्य गति में...** (अर्थात् कि) अन्त में इस भव में यदि समकित न हुआ तो दूसरे भव में भी यदि संस्कार (डाले होंगे तो वहाँ जाकर) प्राप्त कर लेगा। आहा...हा...! लक्ष्मीचन्दभाई! आहा...हा...!

ये धूल की बातें तो कहीं रह गयी! परन्तु अन्दर पुण्य परिणाम के संस्कार भी यदि रह गये (तो) भटक मरेगा चार गति में! चौरासी के अवतार में! किन्तु यदि संस्कार (डाले

होंगे) तो अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। 'पुण्य-पाप से (मैं) भिन्न हूँ'—ऐसे संस्कार डाले होंगे (तो अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा)।

जैसे सकोरा कोरा हो, उसमें पहले पानी डाले तो उसे चूस लेगा परन्तु पानी भर जाने के बाद पानी ऊपर आ जायेगा। वैसे (ये) संस्कार डालते... डालते... आहा...हा...! पहले अन्दर में संस्कार डालने पर ऊपर-ऊपर रहेंगे। फिर संस्कार डालने से अन्दर तल में जायेंगे। आत्मा आनन्द का नाथ है, उसका सम्यग्दर्शन में भान हो जायेगा; परन्तु यदि उसके प्रति का प्रयत्न और पुरुषार्थ करेगा तो! बाहर का पुरुषार्थ कर-करके अनन्त काल से मर गया! आहा...हा...!

स्वर्ग के देव के भव अनन्त बार किये हैं। मनुष्य के भव अनन्त बार किये। इससे भी असंख्यातगुना नारकी के भव किये। इससे असंख्यगुने देव के किये। इससे अनन्तगुने अनन्त निगोद के... लहसुन और प्याज के किये! आहा...! परन्तु कभी इसने आत्मा का विचार नहीं किया, बापू! आहा...हा...! ऐसे भव तूने किये हैं, प्रभु! क्योंकि अभी तक भव बिना नहीं रहा। यदि भव बिना रहा होता तो जैसे सेंका हुआ चना उगता नहीं, कच्चा चना हो तो कसैलापन देता है और वह उगता है, परन्तु चना सेंकने पर कसैलापन छूट जाता है, मिठास देता है और उगता नहीं; वैसे अज्ञान में दुःख होता है और जन्म-मरण होते हैं, और ज्ञान में सुख होता है और जन्म-मरण मिटते हैं। आहा...हा...! अरेरे...! ऐसी बातें, प्रभु! बातें तो तेरे घर की हैं, नाथ! परन्तु तुझे रुचनी चाहिए। बाहर की प्रवृत्तियाँ तो ढ़ेर सारे जगत में चलती हैं।

(यहाँ कहते हैं) **अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। इसलिए सत् के गहरे संस्कार डाल।** (अर्थात्) अन्दर में पुण्य-पाप से रहित (आत्मा है), इसके संस्कार डाल! तो आगे के भव में—उस भव में भी तुझे समकित होगा और भव का अन्त आयेगा।

(विशेष कहेंगे...) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)